



भक्तिकालीन साहित्य में सामाजिक समरसता की अवधारणा

सीमा कुमारी मीणा

हिन्दी विभाग, गौरी देवी राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

भक्तिकालीन साहित्य हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसने सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन की दिशा प्रदान की। इस साहित्य में सामाजिक समरसता की अवधारणा विशेष रूप से प्रमुख रूप में उभरकर सामने आती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि भक्तिकालीन संत कवियों ने अपने काव्य और विचारों के माध्यम से किस प्रकार समाज में समानता, बंधुत्व और मानवता के मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया।

भक्तिकाल के समय भारतीय समाज अनेक प्रकार की असमानताओं, जातिगत विभाजनों और धार्मिक कट्टरताओं से प्रभावित था। ऐसे परिवेश में संत साहित्य ने एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसमें मनुष्य को उसकी जाति, धर्म और सामाजिक स्थिति से ऊपर उठाकर देखा गया। संत कवियों ने ईश्वर की एकता और मानवता की समानता का संदेश देकर समाज में व्याप्त भेदभाव का विरोध किया। भक्तिकालीन साहित्य केवल आध्यात्मिक चेतना का माध्यम नहीं था, बल्कि यह सामाजिक सुधार का भी एक प्रभावी साधन था। संतों की वाणी में सरलता, लोकभाषा का प्रयोग और जनसामान्य से सीधा संवाद उनकी विचारधारा को व्यापक स्तर पर पहुँचाने में सहायक बना। भक्तिकालीन साहित्य में प्रस्तुत सामाजिक समरसता की अवधारणा आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक समाज में भी विभिन्न प्रकार के विभाजन और असमानताएँ विद्यमान हैं। इस दृष्टि से यह साहित्य समकालीन समाज के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

मूल शब्द: भक्तिकाल, सामाजिक समरसता, संत साहित्य, समानता, मानवता, भक्ति आंदोलन

प्रस्तावना

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का वह महत्वपूर्ण युग है, जिसमें साहित्य ने समाज के व्यापक वर्गों को सीधे प्रभावित किया और उन्हें नई दिशा प्रदान की। इस काल में रचित काव्य केवल आध्यात्मिक अनुभवों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने सामाजिक संरचना और मानवीय संबंधों पर भी गहरा प्रभाव डाला। विशेष रूप से सामाजिक समरसता की भावना को सुदृढ़ करने में भक्तिकालीन साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उस समय का समाज अनेक प्रकार की असमानताओं और विभाजनों से ग्रस्त था। जाति-व्यवस्था की कठोरता, धार्मिक आडंबर और सामाजिक भेदभाव ने मानव संबंधों को जटिल बना दिया था। ऐसे वातावरण में संत कवियों ने अपने विचारों के माध्यम से इन समस्याओं को चुनौती दी और एक ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत की, जिसमें सभी मनुष्य समान रूप से सम्मानित हों।

भक्तिकालीन साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया गया, जिससे यह जनसामान्य तक आसानी से पहुँचा। इस साहित्य ने व्यक्ति और ईश्वर के बीच सीधे संबंध पर बल दिया, जिससे मध्यस्थता और सामाजिक भेदभाव की प्रवृत्तियों को कम करने का प्रयास हुआ। सामाजिक समरसता की अवधारणा इस काल के साहित्य का एक प्रमुख आधार रही, जिसमें समानता, बंधुत्व और सहिष्णुता के तत्व निहित हैं। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से यह संदेश दिया कि सभी मनुष्य एक ही परम सत्ता की संतान हैं, इसलिए उनके बीच किसी प्रकार का भेदभाव उचित नहीं है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि भक्तिकालीन साहित्य में सामाजिक समरसता की अवधारणा किस प्रकार व्यक्त हुई है और उसने समाज को किस प्रकार प्रभावित किया। साथ ही, यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि इस अवधारणा की वर्तमान समय में क्या प्रासंगिकता है।

भक्तिकालीन साहित्य का स्वरूप

भक्तिकालीन साहित्य हिंदी साहित्य के विकास का वह चरण है, जिसमें भक्ति भावना के माध्यम से जीवन, समाज और ईश्वर के संबंधों को नई दृष्टि से प्रस्तुत किया गया। इस काल का साहित्य मुख्यतः आध्यात्मिक अनुभवों, ईश्वर के प्रति समर्पण और मानवीय संवेदनाओं के अभिव्यक्ति का माध्यम रहा, किंतु इसके भीतर सामाजिक सरोकार भी गहराई से जुड़े हुए हैं। भक्तिकालीन साहित्य की एक प्रमुख विशेषता इसकी दो धाराएँ हैं—कृसगुण और निर्गुण। सगुण धारा में ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार किया गया और उसके प्रति प्रेम तथा भक्ति का भाव व्यक्त किया गया, जबकि निर्गुण धारा में ईश्वर को निराकार और सर्वव्यापी माना गया। दोनों धाराओं में भक्ति का स्वर भिन्न होते हुए भी मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति समान रूप से दिखाई देती है।

इस साहित्य की भाषा-शैली अत्यंत सरल, सहज और लोकप्रचलित रही। संस्कृत की जटिलता से हटकर संत कवियों ने लोकभाषाओं का प्रयोग किया, जिससे उनका साहित्य जनसामान्य के बीच व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ। यह विशेषता इसे जन-साहित्य के रूप में स्थापित करती है, जहाँ साहित्य केवल विद्वानों तक सीमित न रहकर आम जनता तक पहुँचता है। भक्तिकालीन साहित्य में भावप्रधानता का विशेष महत्व है। इसमें तर्क और बौद्धिकता की अपेक्षा भावनात्मक अनुभूति और आंतरिक चेतना को अधिक महत्व दिया गया है। इस कारण यह साहित्य मानव हृदय के निकट प्रतीत होता है और उसमें आत्मीयता का भाव प्रबल होता है।

इसके अतिरिक्त, इस काल के साहित्य में रूढ़ियों और आडंबरों के प्रति विरोध का स्वर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। संत कवियों ने बाह्य धार्मिक कर्मकांडों की अपेक्षा आंतरिक भक्ति और नैतिक जीवन पर बल दिया, जिससे समाज में एक नई चेतना का संचार हुआ। भक्तिकालीन साहित्य की एक और महत्वपूर्ण

विशेषता इसका व्यापक जनसंपर्क है। यह साहित्य किसी विशेष वर्ग तक सीमित न रहकर समाज के सभी वर्गों को संबोधित करता है, जिससे यह सामाजिक स्तर पर व्यापक प्रभाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन साहित्य का स्वरूप बहुआयामी है, जिसमें आध्यात्मिकता, भावात्मकता, सरलता और सामाजिक चेतना का समन्वय देखने को मिलता है।

सामाजिक समरसता की अवधारणा

सामाजिक समरसता एक ऐसी व्यापक और बहुआयामी अवधारणा है, जो समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों, जातियों, धर्मों और व्यक्तियों के बीच संतुलन, समानता, सहयोग और सौहार्द की भावना को स्थापित करने पर आधारित होती है। इसका मूल उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि समाज में किसी भी प्रकार का भेदभाव, असमानता या विभाजन न हो, बल्कि सभी व्यक्ति एक समान सम्मान, अधिकार और अवसरों के साथ जीवन यापन कर सकें। सामाजिक समरसता केवल एक सैद्धांतिक विचार नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत सामाजिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के आचरण, दृष्टिकोण और सामाजिक संरचनाओं में परिलक्षित होती है।

इस अवधारणा का आधार मानवता और समानता के सिद्धांतों में निहित है। यह मान्यता है कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं और उन्हें किसी भी प्रकार के भेदभाव का सामना नहीं करना चाहिए। सामाजिक समरसता इस विचार को बल देती है कि जाति, धर्म, भाषा, लिंग या आर्थिक स्थिति के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। इसके अंतर्गत समाज के प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार, अवसर और सम्मान प्रदान किया जाना आवश्यक है। यह न केवल सामाजिक न्याय की स्थापना करता है, बल्कि समाज में स्थिरता और शांति को भी सुनिश्चित करता है।

सामाजिक समरसता का एक महत्वपूर्ण तत्व पारस्परिक सम्मान और सहिष्णुता है। जब समाज के विभिन्न वर्ग एक-दूसरे के विचारों, परंपराओं और विश्वासों का सम्मान करते हैं, तब ही समरसता संभव हो पाती है। यह अवधारणा विविधता को स्वीकार करने और उसे सकारात्मक रूप से देखने की प्रेरणा देती है। विविधता को विभाजन का कारण न मानकर उसे समाज की शक्ति के रूप में स्वीकार करना सामाजिक समरसता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

इसके साथ ही, सामाजिक समरसता में सहयोग और सहभागिता की भावना भी अत्यंत आवश्यक है। समाज के सभी वर्गों को विकास की प्रक्रिया में समान रूप से भागीदारी का अवसर मिलना चाहिए। जब व्यक्ति स्वयं को समाज का अभिन्न अंग मानता है और सामूहिक हित के लिए कार्य करता है, तब समरसता की भावना और अधिक सुदृढ़ होती है। यह सहभागिता न केवल सामाजिक संबंधों को मजबूत करती है, बल्कि सामूहिक प्रगति को भी सुनिश्चित करती है।

सामाजिक समरसता का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष न्याय और समान अवसरों की उपलब्धता है। यदि समाज में कुछ वर्गों को विशेषाधिकार प्राप्त हों और अन्य वर्ग वंचित रह जाएँ, तो समरसता स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और अन्य आवश्यक संसाधनों तक समान पहुँच प्राप्त हो। इससे न केवल असमानताओं को कम किया जा सकता है, बल्कि समाज में विश्वास और एकता की भावना भी विकसित होती है।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक समरसता व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक विकास से भी जुड़ी हुई है। जब व्यक्ति अपने भीतर सहानुभूति, करुणा और नैतिक मूल्यों को विकसित करता है, तब वह दूसरों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। यह आंतरिक परिवर्तन सामाजिक स्तर पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है और समरसता को बढ़ावा देता है। हालाँकि, सामाजिक समरसता की स्थापना में कई चुनौतियाँ भी सामने आती हैं।

समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह, रूढ़िवादिता, आर्थिक असमानता और राजनीतिक हितों के कारण विभाजन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इन चुनौतियों का समाधान केवल नीतिगत सुधारों से ही नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता और शिक्षा के माध्यम से भी संभव है।

अंततः, सामाजिक समरसता एक आदर्श स्थिति है, जिसे प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं। यह केवल सरकार या किसी एक वर्ग की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता से ही संभव हो सकती है। जब सभी लोग समानता, सम्मान और सहयोग के सिद्धांतों को अपनाते हैं, तब एक ऐसा समाज निर्मित होता है, जहाँ शांति, स्थिरता और प्रगति का वातावरण स्थापित होता है। इस प्रकार, सामाजिक समरसता न केवल समाज की एकता का आधार है, बल्कि यह उसके समग्र विकास और मानवीय मूल्यों की स्थापना का भी महत्वपूर्ण माध्यम है।

भक्तिकालीन समाज की संरचना

भक्तिकालीन समाज की संरचना बहुस्तरीय और जटिल थी, जिसमें सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। यह वह समय था जब समाज पर परंपराओं और रूढ़ियों का गहरा प्रभाव था, और व्यक्ति की पहचान मुख्यतः उसकी जाति, धर्म और सामाजिक स्थिति के आधार पर निर्धारित होती थी। इस प्रकार की संरचना ने समाज को विभिन्न स्तरों में विभाजित कर दिया था, जिससे समानता और समरसता की भावना कमजोर पड़ गई थी।

भक्तिकालीन समाज में जाति-व्यवस्था अत्यंत कठोर रूप में विद्यमान थी। समाज विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित था, जहाँ ऊँची जातियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि निम्न जातियों को सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित रखा जाता था। इस विभाजन ने सामाजिक असमानता को बढ़ावा दिया और एक बड़े वर्ग को मुख्यधारा से दूर कर दिया। धार्मिक स्तर पर भी समाज में विभाजन की स्थिति थी। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच मतभेद और कभी-कभी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। धार्मिक कर्मकांडों और आडंबरों का अत्यधिक प्रभाव था, जिससे समाज में अंधविश्वास और कट्टरता बढ़ती जा रही थी। यह स्थिति सामाजिक समरसता के लिए बाधक थी।

आर्थिक दृष्टि से भी समाज में असमानता स्पष्ट थी। संसाधनों का वितरण समान नहीं था, जिससे कुछ वर्ग संपन्न और प्रभावशाली थे, जबकि अन्य वर्ग निर्धन और शोषित थे। यह आर्थिक असंतुलन सामाजिक विभाजन को और अधिक गहरा करता था। सामाजिक जीवन में महिलाओं की स्थिति भी सीमित और नियंत्रित थी। उन्हें शिक्षा, स्वतंत्रता और निर्णय लेने के अधिकारों से वंचित रखा जाता था, जिससे समाज में लैंगिक असमानता भी विद्यमान थी। इन सभी कारकों ने मिलकर एक ऐसी सामाजिक संरचना का निर्माण किया, जिसमें विभाजन, असमानता और भेदभाव प्रमुख तत्व थे। यही वह पृष्ठभूमि थी, जिसमें भक्तिकालीन संतों और कवियों ने अपने विचार प्रस्तुत किए और समाज में परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया।

संत साहित्य में समरसता का स्वरूप

भक्तिकालीन संत साहित्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप अत्यंत स्पष्ट और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुआ है। संत कवियों ने अपने विचारों और काव्य के माध्यम से समाज में व्याप्त विभाजन, असमानता और भेदभाव का विरोध करते हुए एक ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत की, जहाँ सभी मनुष्य समान रूप से सम्मानित हों। उनका उद्देश्य केवल आध्यात्मिक जागरण नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन भी था, जिसके माध्यम से वे समरसता की स्थापना करना चाहते थे।

संत साहित्य में समरसता का प्रमुख आधार समानता की भावना है। संत कवियों ने यह स्पष्ट किया कि सभी मनुष्य एक ही परम सत्ता की संतान हैं, इसलिए उनके बीच किसी प्रकार का भेदभाव उचित नहीं है। उन्होंने जाति-व्यवस्था की कठोरता और ऊँच-नीच के भेद को अस्वीकार करते हुए यह संदेश दिया कि मनुष्य की पहचान उसके कर्म और आचरण से होती है, न कि उसकी जन्मजात स्थिति से।

मानवतावादी दृष्टिकोण संत साहित्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसमें मनुष्य को केंद्र में रखकर उसके दुख-दर्द, संघर्ष और अनुभवों को अभिव्यक्त किया गया है। संत कवियों ने समाज के प्रत्येक वर्ग को संबोधित करते हुए यह प्रयास किया कि सभी के बीच समानता और सहयोग की भावना विकसित हो। धार्मिक सहिष्णुता भी संत साहित्य में समरसता का एक प्रमुख तत्व है। संतों ने विभिन्न धार्मिक मतों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया और यह बताया कि सभी धर्मों का मूल उद्देश्य एक ही है। उन्होंने बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों का विरोध करते हुए आंतरिक भक्ति और सच्चे आचरण को महत्व दिया। इसके अतिरिक्त, संत साहित्य में सामाजिक सुधार की भावना भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। संत कवियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और अन्यायपूर्ण परंपराओं के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से लोगों को जागरूक किया और उन्हें एक बेहतर और अधिक समरस समाज के निर्माण के लिए प्रेरित किया। संत साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया गया, जिससे यह विचार जनसामान्य तक आसानी से पहुँचे। यह व्यापक पहुँच समरसता के विचारों को समाज के हर वर्ग तक फैलाने में सहायक बनी।

इस प्रकार, संत साहित्य में समरसता का स्वरूप बहुआयामी है, जिसमें समानता, मानवता, सहिष्णुता और सामाजिक सुधार के तत्व समाहित हैं। यह साहित्य न केवल उस समय के समाज को दिशा प्रदान करता है, बल्कि आज भी सामाजिक समरसता के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।¹ प्रकार, भक्तिकालीन समाज की संरचना को समझना सामाजिक समरसता की अवधारणा के महत्व को स्पष्ट करता है, क्योंकि इसी संदर्भ में संत साहित्य ने समानता और मानवता के मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया।

प्रमुख संत कवियों का योगदान

भक्तिकालीन संत कवियों ने सामाजिक समरसता की स्थापना में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके विचारों और काव्य ने समाज में व्याप्त असमानताओं, जातिगत भेदभाव और धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान किया। प्रत्येक संत कवि ने अपनी विशिष्ट दृष्टि और अनुभवों के माध्यम से समरसता के विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त किया, जिससे यह अवधारणा व्यापक और प्रभावी रूप में समाज तक पहुँची। सबसे पहले कबीर का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने अपने दोहों और साखियों के माध्यम से जाति और धर्म के आधार पर होने वाले भेदभाव का तीव्र विरोध किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ईश्वर एक है और सभी मनुष्य उसकी संतान हैं, इसलिए किसी भी प्रकार का विभाजन अनुचित है। उनकी वाणी में सामाजिक समानता और मानवता का सशक्त संदेश निहित है।

रैदास ने भी समरस समाज की कल्पना को अपने काव्य में प्रस्तुत किया। उन्होंने एक ऐसे समाज की परिकल्पना की, जहाँ कोई ऊँच-नीच न हो और सभी को समान अधिकार प्राप्त हों। उनकी रचनाओं में सामाजिक न्याय और समानता की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो समरसता के विचार को सुदृढ़ करती है। तुलसीदास ने अपने काव्य के माध्यम से नैतिक मूल्यों और सामाजिक आदर्शों को प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में भक्ति के साथ-साथ समाज में संतुलन और मर्यादा की स्थापना का संदेश

मिलता है। उन्होंने समाज को एक नैतिक आधार प्रदान किया, जिससे सामाजिक संबंधों में स्थिरता और समन्वय बना रहे। सूरदास की रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं और प्रेम की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। उनके काव्य में करुणा, स्नेह और सहानुभूति के भाव समाज में एकता और समरसता को बढ़ावा देते हैं। उन्होंने मानव संबंधों की कोमलता को प्रस्तुत कर सामाजिक जुड़ाव को सुदृढ़ किया। इन संत कवियों के अतिरिक्त अन्य संतों ने भी अपने-अपने तरीके से समाज में समरसता के विचार को प्रसारित किया। उनकी शिक्षाएँ और रचनाएँ केवल धार्मिक या आध्यात्मिक संदेश तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि उन्होंने समाज में व्याप्त विभाजन को समाप्त करने और एक समानतापूर्ण व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रकार, प्रमुख संत कवियों का योगदान सामाजिक समरसता की स्थापना में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। उनके विचार आज भी समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं और समरसता के मूल्यों को सुदृढ़ करने में सहायक हैं।

भाषा और अभिव्यक्ति में समरसता

भक्तिकालीन साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा और अभिव्यक्ति शैली है, जिसने सामाजिक समरसता के प्रसार में अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाई। संत कवियों ने जटिल और संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर सरल, सहज और लोकप्रचलित भाषाओं का प्रयोग किया, जिससे उनके विचार समाज के हर वर्ग तक आसानी से पहुँच सकें। यह भाषाई चयन केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। लोकभाषाओं जैसे अवधी, ब्रज, खड़ी बोली और विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग करके संत कवियों ने भाषा को जनसामान्य के जीवन से जोड़ा। इससे साहित्य किसी विशेष वर्ग या शिक्षित समुदाय तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समाज के निम्न और वंचित वर्गों तक भी पहुँचा। यह व्यापक पहुँच सामाजिक समरसता को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी संत साहित्य अत्यंत सरल और प्रभावशाली है। इसमें अलंकारिक जटिलता की अपेक्षा स्पष्टता और संप्रेषणीयता को महत्व दिया गया है। संत कवियों ने अपने विचारों को सीधे और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया, जिससे उनके संदेश को समझना आसान हो गया। यह शैली लोगों के मन पर गहरा प्रभाव डालती थी और उन्हें सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करती थी। भक्तिकालीन साहित्य में संवादात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है, जिसमें कवि सीधे जनता से संवाद करता है। यह शैली लोगों के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करने में सहायक होती है और उनके विचारों को अधिक प्रभावी बनाती है। इससे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विचारों का आदान-प्रदान संभव हुआ और समरसता की भावना को बल मिला।

इसके अतिरिक्त, इस साहित्य में प्रतीकों और रूपकों का भी उपयोग किया गया है, जो जटिल सामाजिक और आध्यात्मिक विचारों को सरल रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह अभिव्यक्ति शैली न केवल साहित्य को आकर्षक बनाती है, बल्कि उसके संदेश को भी अधिक प्रभावी बनाती है। भाषा और अभिव्यक्ति के इस रूप ने सामाजिक दूरी को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब लोग अपनी ही भाषा में विचारों को सुनते और समझते हैं, तो वे उससे अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। यही जुड़ाव सामाजिक समरसता की भावना को मजबूत करता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन साहित्य की भाषा और अभिव्यक्ति न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक समरसता के प्रसार का एक सशक्त माध्यम भी है, जिसने समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा सांस्कृतिक और वैचारिक मंच पर लाने का कार्य किया।

भक्तिकालीन साहित्य का सामाजिक प्रभाव

भक्तिकालीन साहित्य का सामाजिक प्रभाव व्यापक और दीर्घकालिक रहा है, जिसने समाज के विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान की। यह साहित्य केवल आध्यात्मिक या धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने समाज में व्याप्त असमानताओं, कुरीतियों और विभाजनों को चुनौती देते हुए एक नई सामाजिक चेतना का निर्माण किया। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव सामाजिक चेतना के विकास के रूप में देखा जा सकता है। संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से समाज के वंचित और उपेक्षित वर्गों को आवाज दी, जिससे उनमें आत्मसम्मान और जागरूकता की भावना विकसित हुई। यह चेतना उन्हें अपने अधिकारों और अस्तित्व के प्रति सजग बनाती है, जो समरस समाज के निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

भक्तिकालीन साहित्य ने सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर भी प्रहार किया। संत कवियों ने बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों की आलोचना करते हुए आंतरिक भक्ति और सच्चे आचरण को महत्व दिया। इस दृष्टिकोण ने लोगों को पारंपरिक सोच से बाहर निकलने और तर्कसंगत दृष्टि अपनाने के लिए प्रेरित किया। धार्मिक एकता के प्रसार में भी इस साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए संतों ने यह संदेश दिया कि सभी धर्मों का मूल उद्देश्य एक ही है। इस विचार ने धार्मिक कट्टरता को कम करने और सहिष्णुता को बढ़ावा देने में योगदान दिया।

इसके अतिरिक्त, भक्तिकालीन साहित्य ने समाज में नैतिक मूल्यों को सुदृढ़ किया। प्रेम, करुणा, सहानुभूति और सहयोग जैसे मूल्यों को प्रमुखता देकर इस साहित्य ने मानवीय संबंधों को मजबूत किया। यह नैतिक आधार सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है। भक्तिकालीन साहित्य का प्रभाव सांस्कृतिक स्तर पर भी देखा जा सकता है। इसने लोकसंस्कृति को समृद्ध किया और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा दिया। लोकभाषाओं में रचित होने के कारण यह साहित्य जनजीवन का अभिन्न अंग बन गया। इस प्रकार, भक्तिकालीन साहित्य ने समाज में व्यापक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके प्रभाव ने न केवल उस समय के समाज को प्रभावित किया, बल्कि आज भी यह सामाजिक समरसता और मानवीय मूल्यों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

भक्तिकालीन साहित्य में निहित सामाजिक समरसता की अवधारणा आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक समाज, तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के बावजूद, विभिन्न प्रकार की सामाजिक विषमताओं, पहचान-आधारित विभाजनों और वैचारिक टकरावों से जूझ रहा है। ऐसे परिवेश में भक्तिकालीन संतों द्वारा प्रतिपादित समानता, सहिष्णुता और मानवता के सिद्धांत एक संतुलित और समावेशी समाज के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

वर्तमान समाज में जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के आधार पर उत्पन्न होने वाले मतभेद और संघर्ष सामाजिक एकता को प्रभावित करते हैं। इन परिस्थितियों में संत साहित्य का यह संदेश कि सभी मनुष्य समान हैं और एक ही परम सत्ता के अंश हैं, समाज में सौहार्द और पारस्परिक सम्मान को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। यह दृष्टिकोण विभाजन के स्थान पर एकता और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करता है।

समकालीन समय में लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की चर्चा व्यापक रूप से होती है, किंतु व्यवहारिक स्तर पर अभी भी असमानताएँ विद्यमान हैं। भक्तिकालीन साहित्य का मानवतावादी दृष्टिकोण इन मूल्यों को सुदृढ़ करने में सहायक है। यह व्यक्ति को नैतिकता, करुणा और सहानुभूति जैसे गुणों को अपनाने के

लिए प्रेरित करता है, जो सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक हैं।

इसके अतिरिक्त, वर्तमान समय में सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखते हुए सामाजिक एकता स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है। भक्तिकालीन संतों ने विविधता को स्वीकार करते हुए एकता का संदेश दिया, जो आज भी अत्यंत उपयोगी है। यह विचार आधुनिक बहुसांस्कृतिक समाज के लिए एक सकारात्मक दिशा प्रदान करता है। डिजिटल युग में जहाँ सूचनाओं का तीव्र प्रसार होता है, वहीं भ्रम और विभाजनकारी विचार भी तेजी से फैलते हैं। ऐसे में संत साहित्य के सरल, स्पष्ट और मानवीय मूल्यों पर आधारित विचार समाज को संतुलित दृष्टिकोण अपनाने में सहायता कर सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य की सामाजिक समरसता की अवधारणा केवल ऐतिहासिक महत्व तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आज के समाज के लिए भी एक मार्गदर्शक सिद्धांत है, जो शांति, एकता और न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना में सहायक हो सकती है।

निष्कर्ष

भक्तिकालीन साहित्य में सामाजिक समरसता की अवधारणा केवल एक आदर्शवादी विचार नहीं थी, बल्कि वह अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों के प्रति एक सशक्त प्रतिक्रिया भी थी। संत कवियों ने अपने काव्य और विचारों के माध्यम से समाज में व्याप्त असमानताओं, भेदभाव और विभाजन के विरुद्ध एक समावेशी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसने मानवता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों को सुदृढ़ किया।

भक्तिकालीन साहित्य की विशेषता यह रही कि उसने समाज के सभी वर्गों को संबोधित करते हुए एक व्यापक सामाजिक चेतना का निर्माण किया। इस साहित्य ने व्यक्ति को उसकी जाति, धर्म और सामाजिक स्थिति से ऊपर उठकर देखने की प्रेरणा दी और यह संदेश दिया कि सभी मनुष्य समान हैं। इस प्रकार, यह साहित्य सामाजिक एकता और समरसता की स्थापना में एक महत्वपूर्ण माध्यम बना।

इसके साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि संत साहित्य ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को वैचारिक स्तर पर गति प्रदान की। हालांकि इसकी कुछ सीमाएँ भी रहीं, फिर भी इसके प्रभाव ने समाज में नई सोच और दृष्टिकोण को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर सामाजिक सुधारों की दिशा को प्रभावित किया। समकालीन संदर्भ में भी भक्तिकालीन साहित्य की प्रासंगिकता बनी हुई है। वर्तमान समाज में जहाँ विभिन्न प्रकार के विभाजन और संघर्ष विद्यमान हैं, वहाँ इस साहित्य के मूल्यों—जैसे सहिष्णुता, समानता और मानवता—का पुनःस्मरण और अनुसरण आवश्यक है। अंततः, यह कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य में निहित सामाजिक समरसता की अवधारणा आज भी समाज के लिए एक प्रेरणास्रोत है। यह न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत भी है, जो समाज को अधिक समावेशी, संतुलित और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

संदर्भ

1. नमवर सिंह (2015). इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. रामविलास शर्मा (2011). भारतीय साहित्य और संस्कृति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. विश्वनाथ त्रिपाठी (2016). हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
4. नगेन्द्र (2010). हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
5. कृष्णदेव उपाध्याय (2012). भक्ति कालीन साहित्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।

6. नामवर सिंह (2014). कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
7. सुमन राजे (2013). हिंदी साहित्य का विकास. नई दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी।
8. रामकुमार वर्मा (2011). हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. नई दिल्ली: लोकभारती।
9. श्यामसुंदर दास (2010). हिंदी साहित्य. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
10. डॉ. नगेंद्र (2012). भारतीय काव्यशास्त्र. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
11. गणपतिचंद्र गुप्त (2014). हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
12. डॉ. बच्चन सिंह (2013). हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
13. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी (2015). आधुनिक हिंदी कविता. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
14. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी (2012). हिंदी साहित्य और समाज. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
15. डॉ. मैनेजर पांडेय (2016). साहित्य और समाज. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
16. डॉ. नामवर सिंह (2012). आलोचना की भाषा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
17. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (2014). समकालीन हिंदी साहित्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
18. डॉ. केदारनाथ सिंह (2013). कविता और समय. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
19. डॉ. अज्ञेय (2011). साहित्य और संवेदना. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
20. डॉ. नंदकिशोर नवल (2015). हिंदी आलोचना का विकास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
21. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (2012). भक्ति साहित्य की भूमिका. वाराणसी: चौखंबा प्रकाशन।